

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 12: वृत्र का वध

3 October 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब अन्ततः वज्र पराक्रमी वृत्र का सिर काट देता है, तब उसकी आत्मा गिरे हुए शरीर से प्रकाश की धारा बनकर उठती है और भगवान् नारायण में लीन हो जाती है, जबकि देवगण, ऋषि और सिद्धगण विस्मय से देखते और पुष्प-वर्षा करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। षष्ठ स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय दीर्घ संग्राम को उसके समापन तक लाता है — किन्तु यह पराजय की कथा से कहीं अधिक मुक्ति की कथा है। वृत्र अपनी भुजाएँ खोने के पश्चात् भी लड़ता रहता है, और संग्राम के मध्य इन्द्र को सिखाता है कि केवल भगवान् ही, काल रूप में, विजय और पराजय का

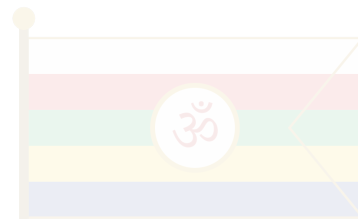
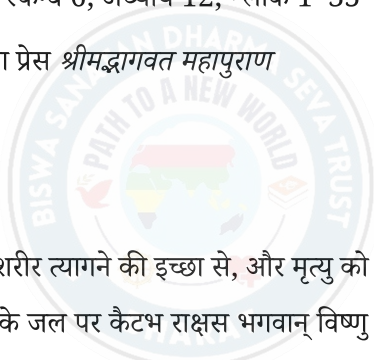
निर्णय करते हैं। जब वज्र अन्ततः गिरता है, तब राक्षस की आत्मा नष्ट नहीं होती, अपितु देदीप्यमान होकर भगवान् में लीन हो जाती है — एक भक्त की महिमामय मृत्यु जो कभी वास्तव में उनके चरणों से दूर गया ही न था।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 12 (द्वादश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: वृत्रासुर की महिमामय मृत्यु
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर वृत्र तथा इन्द्र
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: नर्मदा नदी के तट पर युद्धभूमि
- केन्द्रीय विषय: वृत्र का अन्तिम संग्राम, काल रूप भगवान् पर उसका उपदेश, और उसकी आत्मा का भगवान् में लीन होना
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 12, श्लोक 1-35
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

त्रिशूल का प्रहार

अब युद्धभूमि पर अपना शरीर त्यागने की इच्छा से, और मृत्यु को विजय से अधिक वांछनीय मानते हुए, वृत्र ने अपना त्रिशूल उठाया और इन्द्र पर ऐसे टूट पड़ा जैसे प्रलय के जल पर कैटभ राक्षस भगवान् विष्णु पर टूटा था। त्रिशूल को घुमाते हुए, जिसके फल संसार के अन्त में फूटने वाली अग्नि के समान धधक रहे थे, उसने उसे पूरे बल से फेंका और गरजा, “तू मारा गया, ओ दुष्ट!” किन्तु अविचल इन्द्र ने अपने शत-पर्व वज्र से उस उड़ते त्रिशूल तथा राक्षस की उस भुजा को, जो नागराज वासुकि के शरीर के समान गोल और मोटी थी, दोनों को काट डाला (श्लोक 1-3)।





मृत्यु को विजय से अधिक वांछनीय मानते हुए, वृत्र इन्द्र पर अपना धधकता त्रिशूल फेंकता है, जिसे इन्द्र अपने वज्र से काट देते हैं (श्लोक 1-3)।

एक भुजा कटने पर और क्रोध से भरकर, वृत्र निकट आया और उसने इन्द्र तथा ऐरावत को अपने लौह-गदा से जबड़े पर प्रहार किया — और वज्र इन्द्र के हाथ से छूट गया। देवता और राक्षस, चारण और सिद्ध सभी इस पराक्रम पर चकित हुए, और इन्द्र की दशा देखकर “हाय! हाय!” पुकारने लगे। लज्जित होकर, इन्द्र अपने शत्रु के सम्मुख वह अस्त्र उठाना नहीं चाहते थे। और तब राक्षस ने ऐसे वचन कहे जिनकी कोई शत्रु से अपेक्षा नहीं करता: “अपना वज्र फिर उठाओ, ओ इन्द्र, और अपने शत्रु का वध करो। यह विषाद का समय नहीं है।” (श्लोक 4-6)

काल रूप भगवान् पर वृत्र का उपदेश

जो आगे आया वह किसी योद्धा का उपहास नहीं, अपितु एक भक्त की विद्या थी। विजय, वृत्र ने कहा, सदा शस्त्रधारियों का वरण नहीं करती; भगवान् के अतिरिक्त समस्त प्राणी अपने भाग्य के अधीन हैं — वे भगवान् जो सर्वज्ञ कारण हैं, सृष्टि, पालन और संहार के एकमात्र नियन्ता। वही भगवान्, काल रूप में, विजय और पराजय का विधान करते हैं, जबकि लोक और उनके अधिष्ठाता देवता जाल में फँसे पक्षियों के समान असहाय होकर कर्म करते हैं। जो उन्हें सच्चा कारण नहीं पहचानता, वह अपने बल का स्रोत स्थूल शरीर में ढूँढता है। जैसे काठ की कठपुतली केवल सूत्रधार की इच्छा से चलती है, वैसे ही प्रत्येक प्राणी ईश्वर के अधीन है (श्लोक 7-10)।



एक भुजा कटने पर भी, वृत्र इन्द्र को गिरा हुआ वज्र उठाने को कहता है और सिखाता है कि केवल भगवान् ही, काल रूप में, विजय और पराजय देते हैं (श्लोक 6-17)।

जो भी मनुष्य चाहता है — दीर्घ आयु, धन, यश अथवा शक्ति — वह उसे नियत समय पर प्राप्त होता है, और उतनी ही निश्चितता से उनके विपरीत भी, चाहे उसकी इच्छा न हो। इसलिए, वृत्र ने सिखाया, मनुष्य को सुख और दुःख में, मान और अपमान में, विजय और पराजय में, तथा जीवन और मृत्यु में समान रूप से सन्तुलित रहना चाहिए। तीनों गुण — सत्त्व, रज और तम — प्रकृति के हैं, आत्मा के नहीं; और जो अपने भीतर के द्रष्टा को इन गुणों से सर्वथा परे पहचान लेता है, वह कभी बन्धन में नहीं पड़ता (श्लोक 11-15)।

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।

तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद स न बध्यते ॥ १५ ॥

sattvaṁ rajas tama iti prakṛter nātmano guṇāḥ tatra sākṣiṇam ātmānaṁ yo veda sa na badhyate

अर्थ: सत्त्व, रज और तम प्रकृति के गुण हैं, आत्मा के नहीं; जो आत्मा को इनका केवल साक्षी जानता है, वह इनसे कभी नहीं बँधता। (स्कन्ध 6, अध्याय 12, श्लोक 15)

“मुझे देखो,” उसने कहा, “अपने समस्त बल से तुम्हारे प्राण लेने को प्रयत्नशील, यद्यपि पहले ही पराजित और मेरे अस्त्र तथा भुजा कट चुके हैं। यह युद्ध तो एक जुए का खेल है, जिसमें स्वयं प्राण दाँव पर लगे हैं और बाण ही पासे हैं — और अन्त तक कोई नहीं जानता कि विजय किसकी है और पराजय किसकी” (श्लोक 16-17)। इस निष्कपट वाणी को सुनकर इन्द्र ने उसका स्वागत किया, वज्र उठाया, और हँसते हुए उत्तर दिया।

इन्द्र अपने शत्रु का सम्मान करते हैं

“तुमने सचमुच अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है, ओ राक्षस,” इन्द्र ने कहा, “अब भी ऐसे मन से सम्पन्न, और अपने समूचे अस्तित्व से भगवान् के प्रति समर्पित, जो तुम्हारे ही सच्चे आत्मा और मित्र हैं। तुमने भगवान् विष्णु की उस माया को पार कर लिया है जो संसार को भ्रमित करती है; राक्षसी प्रकृति त्यागकर, तुम उन्नत आत्मा के स्तर तक उठ गए हो। यह बड़े विस्मय की बात है कि, रजोगुणी होते हुए भी, तुमने भगवान् वासुदेव

के प्रति ऐसी अटल भक्ति धारण की है। उसे भला उथले गड्ढे के जल से क्या प्रयोजन, जो अमृत के सागर में — श्रीहरि की भक्ति के अमृत में — क्रीड़ा करता है?” (श्लोक 18-22)

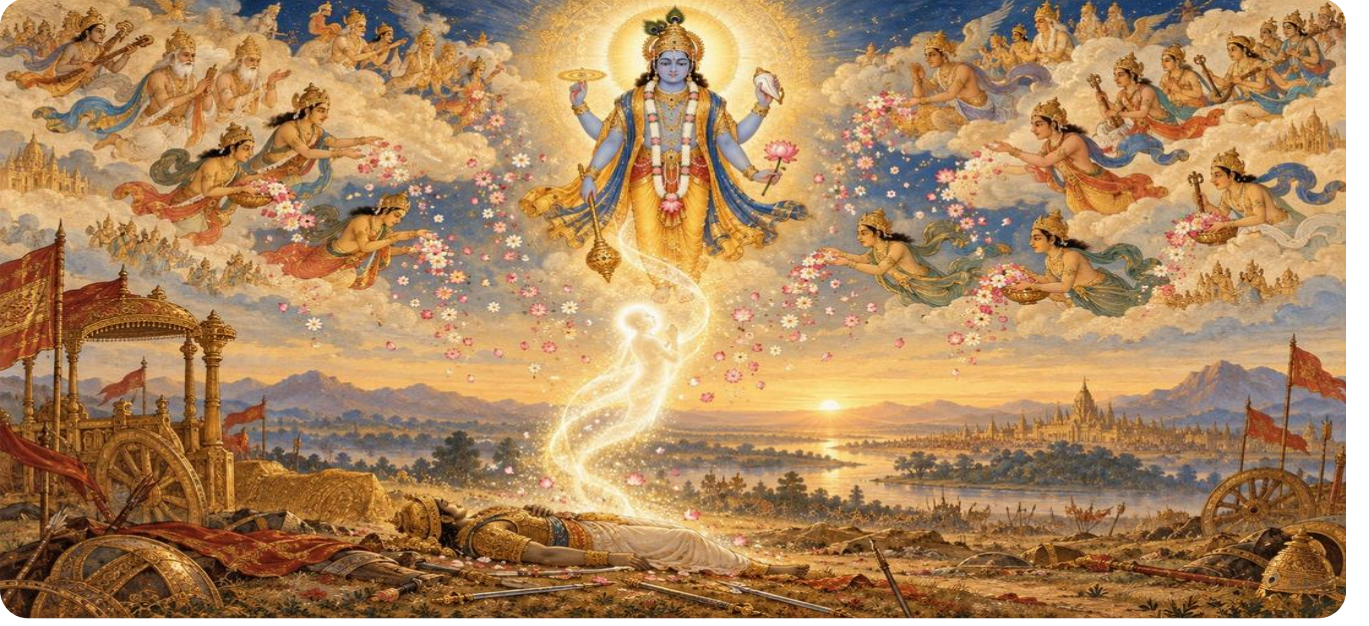
महिमामय मृत्यु

तब दोनों लड़ते रहे। वृत्र ने अपनी शेष बाईं भुजा से लौह-गदा फेंकी, और इन्द्र ने अपने वज्र से उस अस्त्र तथा उस भुजा दोनों को काट डाला। दोनों भुजाएँ जड़ से कटने और रक्त बहने पर, राक्षस एक विशाल पर्वत के समान शोभित हुआ। विशालकाय वह अपना निचला जबड़ा पृथ्वी तक और ऊपरी जबड़ा स्वर्ग तक फैलाकर, मानो तीनों लोकों को निगलने को, इन्द्र को ऐरावत सहित ऐसे निगल गया जैसे अजगर हाथी को निगल जाता है। इन्द्र को निगला गया देख, देवगण, प्रजापति और महान् ऋषि निराशा से भर गए (श्लोक 23-30)।



विशालकाय वृत्र इन्द्र को ऐरावत सहित निगल जाता है, फिर भी नारायण-कवच से रक्षित इन्द्र उदर चीरकर अक्षत बाहर निकल आते हैं (श्लोक 27-32)।

फिर भी, भगवान् नारायण द्वारा कवच-सम नारायण-कवच से तथा योगबल से रक्षित, इन्द्र राक्षस के उदर में नष्ट नहीं हुए। उसे अपने वज्र से चीरकर और बाहर निकलकर, उन्होंने शत्रु का सिर पर्वत-शिखर के समान काट डाला। यद्यपि तीव्र गति से घूमता और चारों ओर काटता हुआ, वज्र को उस ग्रीवा को काटने में उतने ही दिन लगे जितने सूर्य अपने उत्तरायण और दक्षिणायन में लेता है — क्योंकि राक्षस की मृत्यु का नियत समय आ पहुँचा था। दुन्दुभियाँ बजीं, और गन्धर्व तथा सिद्ध ऋषियों सहित हर्ष से पुष्प बरसाने लगे, वृत्र के संहारक की महिमा गाते हुए (श्लोक 31-34)।

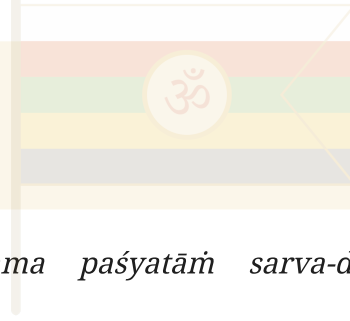


जैसे ही दुन्दुभियाँ बजती और ऋषि पुष्प बरसाते हैं, वृत्र की स्वयं-देदीप्यमान आत्मा दिव्य भगवान् में लीन हो जाती है (श्लोक 34-35)।

फिर वह क्षण आया जिसकी ओर यह समूचा दीर्घ युद्ध बढ़ रहा था। वृत्र के शरीर से एक तेज बनकर निकलकर, राक्षस की आत्मा भगवान् में लीन हो गई — वे भगवान् जो समस्त भौतिक लोकों से परे हैं — जबकि वहाँ उपस्थित सभी विस्मय से देखते रहे (श्लोक 35)।

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम ।

पश्यतां सर्वदेवानामलोकं समपद्यत ॥ ३५ ॥



vṛtrasya dehān niṣkrāntam ātma-jyotir arindama paśyatām sarva-devānām alokaṁ samapadyata

अर्थ: हे शत्रुदमन, वृत्र की स्वयं-देदीप्यमान आत्मा उसके शरीर से निकलकर समस्त देवताओं के देखते-देखते दिव्य भगवान् में लीन हो गई। (स्कन्ध 6, अध्याय 12, श्लोक 35)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. केवल भगवान् ही, काल रूप में, विजय और पराजय देते हैं। वृत्र सिखाता है कि किसी योद्धा का बल परिणाम तय नहीं करता; समस्त प्राणी भगवान् की इच्छा से चलते हैं, जाल में पक्षियों के समान (श्लोक 7-10)।
2. समता इस ज्ञान का फल है। चूँकि लाभ और हानि अपने नियत समय पर आते हैं, ज्ञानी मान-अपमान, विजय-पराजय, जीवन-मृत्यु में सन्तुलित रहता है (श्लोक 14)।
3. आत्मा साक्षी है, गुणों का कर्ता नहीं। सत्त्व, रज और तम प्रकृति के हैं; जो आत्मा को इनका मौन साक्षी जानता है, वह बन्धन से मुक्त है (श्लोक 15)।

4. भक्ति प्रत्येक छोटे पुरस्कार को मात देती है। इन्द्र विस्मित होते हैं कि जो भगवान् की भक्ति के सागर में आनन्दित है, उसे सांसारिक लाभ के गड्ढे-जल की कोई इच्छा नहीं (श्लोक 22)।

5. भक्त की मृत्यु ही उसकी मुक्ति है। वृत्र की आत्मा नष्ट नहीं होती, अपितु भगवान् में लीन हो जाती है — उस भक्त का महिमामय अन्त जिसका हृदय कभी उनके चरणों से दूर गया ही न था (श्लोक 35)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

समता का उपदेशक ढूँढने के लिए युद्धभूमि अन्तिम स्थान है, और एक मरता हुआ राक्षस वह अन्तिम मुख जिससे हम उसे सुनने की अपेक्षा करें। फिर भी यहाँ वृत्र है, भुजाएँ कटी और प्राण निकलते हुए, अपने शत्रु को गिरा हुआ अस्त्र उठाने को कहता, और प्रत्येक प्रहार के बीच उसे उस एक सत्य की ओर संकेत करता जो आत्मा को स्थिर करता है: कि विजय और पराजय हमारे हाथ की वस्तु नहीं, अपितु भगवान् की दी हुई हैं, और हमारे भीतर की आत्मा प्रकृति के चंचल खेल का केवल साक्षी है, कभी उसका बन्दी नहीं। वह अपने समस्त बल से लड़ता है और बिना कटुता के हारता है, क्योंकि उसने परिणाम वहीं रख दिया है जहाँ वह है। और जब अन्त आता है, तो वह अन्त होता ही नहीं। जो प्रकाश सदा उसके भीतर था, वह अपने स्रोत में लौट जाता है; उसकी आत्मा स्वर्ग की आँखों के सम्मुख भगवान् में लीन हो जाती है। श्रीमद्भागवत हमें यह दिखाता है जिससे हम विजय और पराजय पर अपनी व्याकुल पकड़ ढीली करें, और सीखें कि पूरे हृदय से कर्म करें किन्तु परिणाम ईश्वर के हाथों में छोड़ दें — यह विश्वास करते हुए कि भक्त के लिए मृत्यु भी केवल एक घर-वापसी है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, एक प्रयास चुनिए — कोई कार्य, कोई कठिनाई, किसी प्रकार की स्पर्धा — और उसे अपना समूचा बल दीजिए, साथ ही उसका परिणाम मौन रूप से भगवान् को समर्पित करते हुए। आरम्भ करने से पहले उसे उनके चरणों में अर्पित कीजिए; जब वह पूर्ण हो, चाहे उसमें सफलता मिली हो या निराशा, परिणाम को उनकी देन के रूप में ग्रहण कीजिए और समभाव बने रहिए। दिनभर स्मरण रखिए कि आप वह शरीर नहीं हैं जो जीतता या हारता है, अपितु भीतर की साक्षी आत्मा हैं, और कर्म करते हुए पावन नाम को अपनी जिह्वा पर शान्त रूप से रहने दीजिए।

उपसंहार

षष्ठ स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय संहार के एक दृश्य को भागवत की सबसे देदीप्यमान शिक्षाओं में से एक में बदल देता है। वृत्र, मरते हुए भी, सिखाता है कि केवल भगवान् ही समस्त विजय और पराजय का निर्णय करते हैं, कि ज्ञानी समभाव में रहता है, और कि आत्मा प्रकृति के गुणों का अछूता साक्षी है। इन्द्र अपने शत्रु की भक्ति का सम्मान करते हैं, और जब वज्र अन्ततः गिरता है, तब राक्षस की आत्मा स्वर्ग के सम्मुख भगवान् में लीन हो जाती है। जैसे-जैसे यह स्कन्ध अगले अध्याय में इस वध के इन्द्र के अपने पाप-भार की ओर मुड़ता है, हम इस अध्याय का उज्ज्वल समापन साथ ले चलते हैं: कि जिसका हृदय भगवान् में विश्राम करता है, उसके लिए मृत्यु का क्षण ही वापसी का क्षण है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ तथा साभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, द्वादश प्रवचन।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-6-chapter-12-glorious-death-of-vritrasura-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

